ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 185-187

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-II, Issues-20, YEAR- June-2021

मध्ययुगीन समाज तथा भक्त कवियों की सामाजिक चेतना

डॉ0 राम अधार सिंह यादव Email- yramadhar64@gmail.com

Received- 01.06.2021, Revised- 05.06.2021, Accepted - 09.06.2021

सारांश : ***मध्ययुग में जीवन पर धर्म की गहरी छाप थी। स्मिथ का उल्लेख करते हुए डॉ0 राम कुमार वर्मा का कथन है कि "14वीं सदी में कुछ प्रलोभन तथा भय के कारण उत्तरी भारत की अधिकांश जनता मुसलमान हो गयी थी। मुस्लिम शासक की विनाशकारी प्रवृत्ति के कारण हिन्दुओं में समाज संस्कार को अधिक नियमित करने की आवश्यकतका पड़ी। इसके परिणाम स्वरूप वर्णाश्रम धर्म की रक्षा, छुआछूत की जटिलता तथा परदे की प्रथा है।"[1] डॉ0 वर्मा के कथन इस आशय की पुष्टि करते है कि धर्मान्तरण की अमानुषिक कृति के परिणाम स्वरूप ही मध्यकाल में जाति–पाँति तथा परदा प्रथा की जटिलताओं का स्वरूप समाज में व्याप्त होता चला गया और चतुष्वर्णीय व्यवस्था के अन्तर्गत समाज जीवन यापन करने पर बाध्यक हो गया, लेकिन यह वर्ण व्यवस्था धीरे–धीरे कठोर होती गयी इसके पीछे भी कहीं न कहीं धर्मान्तरण का प्रभाव अवश्य हो रहा होगा। हम पहले भी संकेत कर चुके हैं कि दक्षिण में धर्मान्तरण उसके विरोध का परिणाम ही था कि नीचे से नीचे तबके के जातियों में संतों और भक्तों का अभ्युदय हुआ और यही बात उत्तर भारत में भी देखने को मिलती है। यहाँ जितने भक्त और संतकवि समाज के बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किये वे लगभग–लगभग नीची जाति के ही थे।***

कुंजीभूत शब्द– चतुष्वर्णीय व्यवस्था, धर्मान्तरण, छूआछूत, वाद्ययन्त्र।

शास्त्र और लोक मर्यादा की रक्षा के निमित्त सामान्य जन व सामंती मूल्यों में टकराहट देखने को मिलती है जिसके विरोध में अनेक आंदोलन खड़े होते दिखाई देते है।

वर्ण व्यवस्था : भारत वर्ष में वर्ण और जाति का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। कर्म के आधार पर वर्ण को निर्धारित करने वाला समाज धीरे–धीरे दृढ़ तथा कठोर होता चला गया। उच्चवर्णों का प्रभुत्व तथा उनके द्वारा निम्न दलित जातियों के शोषण ने समाज के व्यवस्था को ही चरमरा दिया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णों में विभक्त भारतीय समाज (ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में उल्लेख) अनेक जातियों तथा उपजातियों में विभक्त होता चला गया।

अस्तु पहले जो वर्गीकरण कर्म के आधार पर था आगे चलकर ऊँच–नीच की भावना के आधार पर विभक्त हो गया। मध्यकाल तक आते–आते यह स्थिति और जटिल हो गयी। समस्त जनता दास्य बोध से ग्रसित, विचार शून्य होती चली जा रही थी। मानसिक रूप से लाचार मध्यकालीन जनमानस संकीर्णता के दायरे में पीसता चला गया।

एसोसिएट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, एस0 एम0 कालेज चन्दौसी, सम्भल, (उ0प्र0), भारत

अनुरूपी लेखक

जिसकी झलक हमें मध्यकालीन भक्ति साहित्य के अन्दर दृष्टिगत होती है।

ब्राह्मण वर्ण : वर्णव्यवस्था के नियम 15वीं सदी के आरम्भ में अत्यन्त कठोर थे। कबीर के समय में विप्रों का आतंक शूद्रों पर था इस प्रकार धार्मिक लाभ से वंचित शूद्र ब्राह्मणों से भयभीत रहा करते थे। तुलसीदास जी कलियुग के ब्राह्मणों का वर्णन रामचरित मानस के उत्तरकाण्ड में करते हुए लिखते है कि –

बरन धर्म नहिं आश्रमचारी। श्रुति विरोध रत नर नारी।।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोऊ नहिं मान निगम अनुशासन।।[2]

अर्थात् सब स्त्री–पुरुष वेद के विरोध में लगे रहते हैं और ब्राह्मणों ने तो वेद को बेचना भी प्रारम्भ कर दिया है। ब्राह्मणों की स्थिति का विवेचन इससे अच्छा और कहाँ मिलेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो प्रतिष्ठा ब्राह्मणों की पूर्व मध्यकाल या प्राचीन काल में भारतीय समाज में विद्यमान थी वे धीरे–धीरे नैतिक स्तर पर ह्रास होती चली गयी। वे अध्यात्म की ओर न झुक कर भौतिक सुखों की ओर उन्मुख हो रहे थे।

क्षत्रिय वर्ण : क्षत्रियों का सामाजिक आदर्श था, शत्रु से युद्ध कर विजय प्राप्त करना और परम्परागत वर्ण व्यवस्था के अनुसार शासन करना। इलन के अनुसार मध्यकालीन क्षत्रिय लोग भोग विलास में पूर्णरूपेण जीवन व्यतीत करते थे। वे तम्बुओं के नीचे कालीनों पर विराजमान रहते थे और वाद्य–यन्त्रों के सहित नर्तकियों के नृत्य का आनन्द उठाते फिरते थे।

वैश्य वर्ण : समाज का तीसरा वर्ग वैश्य था जिसका कार्य व्यापार का था। मध्यकाल में सामाजिक जीवन कठोर था और राज्यों में कलह होने के कारण यह वर्ग भी अपने कार्यों का निर्वहन ठीक से नहीं कर पा रहा था। भक्त कवियों ने ऐसे वैश्यों का उल्लेख किया है, जो कि अपने कार्य में ईमानदारी नहीं दिखाते थे।

शूद्र वर्ण : यह समाज का सबसे निम्न वर्ग था। इसको समाज में कोई प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी। इनका कार्य अन्य तीनों जातियों की सेवा करना था।

उपरोक्त वर्णों में भी जाति के अन्दर अनेक उपजातियों का समावेश होता चला गया जिसके सामाजिक व्यवस्था एक ऐसे कठोर ढांचे में परिवर्तित

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-II, Issues-20, YEAR- June-2021

होती चली गयी जिसमें घुटन के अलावा और कोई दृष्टि नहीं थी। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि वर्ण व्यवस्था को इसलिए समाज में लागू किया गया था कि समाज के प्रत्येक क्षेत्र का कार्य निर्विघ्न रूप से हो सके, उसी ने इतना विकृत रूप धारण कर लिया कि शास्त्र, धर्म, जीवन, मनुष्यता, सब पर से मनुष्य का विश्वास उठता चला गया। जिस समाज में गीता जैसे कर्मवाद का सिद्धान्त मौजूद हो उस समाज की स्थिति इतनी चिन्तनीय हो जायेगी यह एक सोचनीय विषय है। अतः जाति व्यवस्था में अनुशासन का न होना और धर्मान्तरण के विरोध में अपने जातीय अस्मिता की रक्षा के निमित्त समाज के निम्न वर्गों से लेकर प्रबुद्ध वर्गों तक के कुछ संत भक्त कवियों ने विचार करना प्रारम्भ किया और इसका परिणाम हुआ, ऐसे विचारों के प्रति विद्रोह की भावना का प्रवेश, दूसरे यह कि जाति परिवर्तन करते हुए हिन्दुओं से धर्म और समाज की रक्षा की भावना।

इस प्रकार जातीय चेतना की भावना ने हमारे मध्यकालीन विचारकों, संतों, भक्तों को सोचने पर बाध्य किया और परिणाम स्वरूप कुछ सांस्कृतिक टकराहट भी दृष्टिगत हुए जैसे–लोक और शास्त्र के स्तर पर, सामान्य जन और सामंती मूल्यों में, शूद्र और द्विज में तथा निर्गुण और सगुण में। डॉ0 राम विलास शर्मा लिखते है कि "भारत में वर्ण व्यवस्था का मनुवादी रूप परम्परा का नियता रहा है, भारतीय सभ्यता मूलतः ग्रामीण एवं पारलौकिक रही है....।" अतः भारतीय जन मानस जो ग्रामीण एवं पारलौकिक रही है वह कैसे बर्दास्त कर लेता कि शास्त्रीय मर्यादा सांमती मूल्यों में पीसता सामान्य जन समुदाय शूद्र और द्विजों के संघर्ष से उत्पन्न धर्मान्तरण के प्रति लोलुप निम्न वर्गीय समाज, अपने नैतिक मूल्यों को खोता चला जा रहा है।

अस्तु भक्त तथा संत कवियों ने मध्यकाल में एक जन चेतना के रूप में अपने वाणी को मुखरित किया जिसका सर्वप्रथम परिणाम निकला संत काव्य धारा के माध्यम से जन चेतना का मार्ग। कबीर दास एवं अनुयायियों ने जाति प्रथा का घोर खण्डन किया। निम्न पंक्तियों में कबीर का विचार दृष्टव्य है –

ऐसा भेद विगूचन भारी। वेद कतेब दीन अरू दुनियाँ, कौन पुरिष कौन नारी।
एक बूँद ऐके मल मूतर, एक चाम एक गूदा। एक जाति कै सब उतपन्ना, कौन ब्राह्मण कौन सूदा।
माटी का घड सहजि उतपन्ना, नाद बिन्दु समाना। विनसि गयां थै का नांव धरिहौं, बढ़ि गुनि भ्रम जानो[3]

कबीर के मतानुसार सभी जीव एक ही ब्रह्म द्वारा निर्मित हुए हैं। जब समस्त संसार की रचना एक ही ईश्वर द्वारा हुई है तो उनमें भेद कहाँ रहा। भक्त कवियों के अनुसार सभी मनुष्यों का जन्म समान रूप से होता है, सभी में भगवान का वास है, ऊँच–नीच की भावना सर्वथा गलत है।

ऊँच–नी सब गोरख–धंधे। सब हैं उस अल्ला के बन्दे।।[4]

संत कवियों ने समाज में एक नई चेतना जागृत करने का प्रयत्न किया और सभी जीवों में परमात्मा की सत्ता निहित है, का संदेश दिया। इस विश्व में न कोई कुलीन है, न कोई अछूत। धनी–निर्धन, राजा–रंक, ब्राह्मण, शूद्र सभी बराबर है। ये सामाजिक मेल समाज द्वारा निर्मित किये गये हैं। ब्रह्म की दृष्टि में सभी समान है।

बांभन सूद वैस अरू खत्री, डोम चण्डाल किन होई। होई पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारे कुल दोई।।[5]

इस प्रकार सभी संतों ने समाज के समक्ष एक क्रांतिकारी विचारधारा प्रस्तुत किया। कबीर, नानक, दादू, सुन्दरदास, गरीबदास, मूलकदास आदि ने समाज में समता की भावना का बीजारोपण किया। संत कवियों की यह देन महत्वपूर्ण मानी जा सकती है, क्योंकि यदि समाज से ऊँच–नीच की भावना समाप्त हो जाए तो संघर्ष एवं प्रतिरोध भी समाप्त हो जाय, एवं सुख–शान्ति का पूर्ण रूप से विकास हो। हिन्दू–मुस्लिम संघर्श के युग में समन्वय की भावना और जातिय चेतना जागृत करने की भावना एक नवीन मार्ग पर चलने का दिषा निर्देश था। एक तरफ संत कवियों ने वर्ण व्यवस्था का विरोध करते हुए जाति–पाँति, छुआछूत की भावना पर कुठाराघात किया तो दूसरी तरफ सगुण भक्त कवियों ने वर्णाश्रम धर्म तथा वर्ण व्यवस्था को कुछ हद तक बेहतर बताया। फर्क इतना था कि इनका संदेश अपने–अपने कर्तव्य के पालन में निहित था। मनुष्य का जीवन चार भागों में विभक्त था, यथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास। पाणिनी के काल में यह व्यवस्था अपने उन्नत दशा में थी। कालीदास ने भी रघुवंश महाकाव्य में आश्रम व्यवस्था की पुष्टि करते हुए राम को उस व्यवस्था के पर्याय के रूप में स्वीकार किया है।

"शैशवे अभ्यस्थ विद्यानाम्। यौवने विशयेषिणाम्।
वारधम्ये मुनि वृत्तिनाम्। योऽग्येनाते तनुज्याम
रघुणाम अन्वयम वक्षे।"[6]

मध्यकाल में मुसलमानों के आक्रमण के कारण भारतीय जनमानस में नैराश्य की भावना व्याप्त हो चुकी थी। इस परिस्थिति में वे अपने अस्तित्व को भूल भोग–विलास में संलिप्त होते गये और परिस्थितिवश आश्रम व्यवस्था लगभग समाप्त प्राय हो चली। संत कवियों ने नाथ तथा बौद्ध सिद्धान्तों के प्रतिकूल प्रवृत्तिमार्गी होने का संकेत देते हुए गृहस्थाश्रम में अपनी निष्ठा को व्यक्त किया।

जन सामान्य अपने कर्तव्यों के प्रति सचेष्ट हो, यह चेतना जगाने का कार्य संत कवियों ने किया। तुलसीदास ने वर्ण–व्यवस्था के समान ही आश्रम व्यवस्था पर अपनी आस्था व्यक्त की है। रामचरित मानस के उत्तरकाण्ड में वो लिखते हैं कि

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-II, Issues-20, YEAR- June-2021

वरनाश्रम निज–निज धरम निरत वेद पथ लोग। चलहि सदा पावहिं सुतहिं नहिं भय सोक न रोग।।[7]

तुलसीदास के अनुसार, गृहस्थ को अपने कुटुम्ब का पालन करना चाहिए, नही ंतो उसकी दशा शोचनीय हो जाती है। समाज में उस समय अकर्मण्यता विद्यमान थी। निवृत्तिमार्गी विचारधारा का प्रभाव समाज पर अधिक था। ऐसे परिवेश में समाज में प्रवृत्तिमार्गी होने का संदेश निश्चित रूप से जातीय स्थिता को जागृत करने का एक अनूठा प्रयास था। सूरदास ने भी उद्धव–गोपी संवाद में आश्रम व्यवस्था पर प्रकाश डाला है।

श्याम राम को संगी यह अलि कीजत यह सन्यास।।[8]

अतः गोपियाँ कहती है कि श्रीकृष्ण को सन्यास आश्रम से क्या काम, यह कहकर इसमें सन्यास आश्रम की ओर संकेत किया गया है।

अस्तु संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मध्यकाल में जो जातीय व्यवस्था थी और शैनेः–शैनेः समाज को खोखली करती जा रही थी सूर, तुलसी आदि कवियों ने उन्हें पुनः स्थापित करने का एक आदर्श समाज में रखा, लेकिन यह जातीय चेतना कतिपय कारणों से उस रूप में जागृत न हो सकी, जैसा कि सूर और तुलसी आदि भक्त कवियों की कल्पना थी। कबीर आदि संतो ंके द्वारा जांति–पांति के विरोध ने समाज में एक ऐसे वर्ग को जन्म दिया, जो किसी भी मर्यादा और सम्मान करने में अपने आप को खड़ा नहीं कर पा रहे थे, वस्तुतः वे अपने को किसी भी बन्धन में रहना पसन्द नहीं करते थे। इससे समाज में जो सुधार की कल्पना संत कवियों ने की वो धीरे–धीरे एक दूसरे समस्या का रूप धारण करती दिखायी दी जिसकी पहचान तुलसीदास ने की। तुलसी ने वर्ण–व्यवस्था और वर्णाश्रम धर्म के मूल्यों को स्थापित किया और भक्त तथा भक्ति के माध्यम से मनुष्य को उन मूल्यों के अन्तर्गत रहने का संकेत दिया जो भारतीय परम्परा की पहचान थी। डॉ0 राम विलास शर्मा ने लिखा है कि "वाल्मीकी रामायण में राम की शिक्षा पूरी करने के लिए उनको जब बालि के पास भेजा गया, जो नास्तिक थे। आपको नास्तिक मत भी जानना है, यह यहाँ की शिक्षा में आवश्यक था।"[9] कहने का आशययह है कि भारत की एक परम्परा रही है और परम्परा के विरूद्ध जब भी आप अपने आपको स्थापित करेगें तो निःसंदेह सफलता नहीं मिलेगी। अतः गोस्वामी तुलसीदास ने भारतीय परम्परा को पहचाने हुए जन मानस में लोक जागरण की भावना का विकास अपने ग्रंथों के माध्यम से दिया। भक्त कवियों का प्रदेय मध्यकालीन समाज को अपने स्वः का बोध करने में माना जा सकता है जो आगे चलकर जन आंदोलन का रूप धारण कर लेता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ0 375.
2. श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, तुलसीदास
3. कबीर ग्रंथावली, सम्पादक – श्यामसुन्दरदास।
4. हरिजन वर्ग और उसका उत्थान राम जी लाल, पृ0 29.
5. कबीर ग्रंथावली, सम्पादक – श्यामसुन्दरदास
6. रघुवंश महाकाल, कालिदास।
7. श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, दोहा सं0 20.
8. सूरसागर भ्रमरगीत प्रसंग – सूरदास।
9. संत सुधासार, पहला खण्ड, पृ0 183, रैदास शब्द 3.

*****